
सहोदरा
काव्य
माला
मानस
सन्ताप
विमोचन
शकुन्तला दुबे

दो शब्द

'सहोदरा काव्यमाला' को मैं आद्योपांत मनोयोग-पूर्वक पढ़ गया। इसकी सभी कविताएं कवयित्री के भीतर से उपजी हैं और उसके अंतर्मन की व्यथा-कथा को कहती हैं। मानवीय संवेदनाओं से ओत-प्रोत ये रचनाएं पाठक के मन को कुरेदती हैं और उसे सोचने के लिए विवश करती हैं। कहीं-कहीं तो ऐसा लगता है कि कवयित्री अपनी भावनाओं के माध्यम से पाठकों के अंतर को मुखर कर रही हैं। काव्य की यही तो सार्थकता होती है। एक के स्वर में अनेकों के समवेत स्वर सुनाई देते हैं।

कवयित्री ने अपनी भावाभिव्यक्ति के लिए कुछ बिम्बों और कुछ प्रतीकों का सहारा लिया है। इससे संग्रह की रचनाएं अधिक जीवंत बन गई हैं। यह कहने में अतिशयोक्ति नहीं होगी कि प्रस्तुत संग्रह की कविताएं आज की लीक से हटकर हैं।

मेरी मान्यता है कि रचनाएं वही प्रभावशाली होती हैं, जिनके पीछे रचनाकार का ज्ञान नहीं, अनुभूतियां होती हैं। मुझे हर्ष है कि इस संग्रह की रचनाओं का सृजन कवयित्री ने अपनी अनुभूतियों के आधार पर किया है।

मैं लेखिका को हार्दिक बधाई देता हूँ और उनके उज्जवल भविष्य की कामना करता हूं।

—यशपाल जैन

सस्ता साहित्य मण्डल
एन-77, कनॉट सर्कस,
नई दिल्ली-110001

सहोदरा

काव्य माला

•

शकुन्तला दुबे

•

१९९६

प्रकाशक :
मनोबल स्टडी सोसाइटी
२३८, मुनीरका विहार,
नई दिल्ली-११० ०६७

प्रथम संस्करण : १९९६

मूल्य : ५१/-

टाइपसेटिंग :
बुकमैन
शकरपुर, दिल्ली-११० ०९२

मुद्रक :
भावना एन्टरप्राइजेज
मानसरोवर पार्क, शाहदरा, दिल्ली

समर्पण

स्वर्गीया विद्योत्तमा सहोदरा
की पुण्य स्मृति
में सादर

प्राक्कथन

इक्कीसवीं सदी की ओर अग्रसर प्रगतिशील युग में, सम्भवतः कविता जैसी भावुकता में खो जाने वाली विधा के लिए किसी के पास समय न रहे, लेकिन पाठकगण, आप यह अनुमान न लगा बैठें कि कविता लिखने-पढ़ने की यह एक लम्बी परम्परा, आने वाली सदी में लुप्त हो जायेगी। कविता का जन्म सहज रूप से अपनी कोमलतम भावनाओं के भंवर से उभरने के प्रयास की परिणति है, उन्हीं भावों की अभिव्यक्ति से नौ रसों की फुहारें निकल पड़ती हैं। स्वर सज्जित हो जाने के बाद चित्त में किसी तरह का विकार नहीं रह पाता, मानो कवि के लिए जो स्वान्तः सुखाय था वह जन-मानस के लिए भी कल्याणकारी बन सकता है, क्योंकि कविता में मनुष्य की रचनात्मक कल्पना-शक्ति सहज रूप से मुखरित हो उठती है।

पाठकगण इस सहोदरा काव्यमाला को पढ़ते समय ध्यान में रखें कि इन कविताओं का संग्रह भावाभिव्यक्ति से अधिक इस सत्य की पुष्टि करता है कि यदि मनुष्य अपनी मानसिक त्रासदी को शब्दों में गूंथ दे तो वह पीड़ा चेतना के अन्तराल से उभर कर उस दिशा में सहज रूप से प्रवाहित होने लगती है, जिसे वेदों में आदि काल में 'नाद ही ब्रह्म' कहा गया है। अति आधुनिक युग में मानव को शायद 'ईश्वर' 'धर्म' आदि में आस्था न रहे, किन्तु दुःखी, अभावग्रस्त, असहाय होने पर वह सहज होने के लिए कोई-न-कोई आलम्बन अवश्य ढूंढ़ता है। यह कटु सत्य है कि आज का मानव जितना अधिक तनाव ग्रस्त है उतना अधिक पहले कभी न था, मानो आशा, विश्वास, मनोबल, निष्ठा आदि इस वैज्ञानिक युग में कहीं खोते जा रहे हैं, शायद मानव अपनी कोमल भावनाओं को सहज रूप से लेने में असमर्थ-सा हो गया है। वह अपने सुख-दुःख में अत्यन्त अकेलापन और अजनबीपन अनुभव करने लगा है। यद्यपि सुख-शान्ति के लिए वह अत्यधिक कृतसंकल्प है और किसी भी कीमत पर 'आनन्द' को खरीद लेना चाहता है, किन्तु आनन्द तो किसी की मुट्ठी में बन्द नहीं किया जा सकता, किसी कीमत पर खरीदा नहीं जा सकता।

इसी निराशा भरी अत्यन्त दयनीय मनःस्थिति को मनोचिकित्सक उन्माद—अवसाद, मनोविक्षिप्त रोग कहते हैं। इसका रोगी मानसिक यातना से त्राण पाने के लिए कभी-कभी तो स्वयं मृत्यु की गोद में समा जाने के लिए आतुर हो जाता है। उसकी जीवन-मरण की गुत्थी सुलझाने के लिए आधुनिक, भौतिक एवं आध्यात्मिक विचारधाराएं निरर्थक सिद्ध होती हैं। मरण-तृष्णा से प्रेरित व्यक्ति के लिए उन्माद-अवसाद की विपरीत दो मनोस्थितियों में समस्त ब्रह्माण्ड की जटिलता समा जाती है। जीवन उद्देश्यहीन केवल चौरासी लाख योनियों में भटकाव मात्र बन कर रह जाता है। ऐसी निराशा और मूढ़ अज्ञानता में कोई भी ज्ञान उसे सहारा नहीं दे पाता।

बुद्धिजीवी स्तर पर इस रोग की जड़ को पकड़ने में आधुनिक मनोचिकित्सक असमर्थ रहे हैं यद्यपि उनके पास उपचार के लिए अनेक शमनकारी औषधियां, बिजली का आघात (E.C.T.) एवं तरह-तरह की मनोचिकित्सायें (Psychotherapy) उपलब्ध हैं, लेकिन जो स्वयं निराश है और मृत्यु के सघन अन्धकार में खो जाने के लिए व्याकुल है उसे कौन आशा-किरण पकड़ा सकता है?

ऐसी ही मनःस्थिति में मेरी प्यारी बहन विद्योत्तमा को (जिसकी प्रथम कविता से यह सहोदरा-काव्यमाला प्रारम्भ होती है, 30 सितम्बर, 1991 की एक दुखद घड़ी में महाप्रयाण होता है) आधुनिक मनोचिकित्सा के समस्त उपचार बचाने में असमर्थ रहे। माना कि जन्म-मरण सब विधना के हाथ में होता है, लेकिन इस बीच की स्थिति में त्रिशंकु की तरह झूलते हुये मानसिक रोगियों की पीड़ा को जिस किसी ने पास से देखा, सुना और झेला है वह इस काव्यमाला को पढ़कर अवश्य आत्मचिन्तन करने के लिए विवश हो जायेगा। प्रस्तुत कवयित्री ने इस विकल्प का चिन्तन स्वयं को अत्यन्त दुःखी और भयभीत मनःस्थिति में रखकर किया है, इस उत्पीड़न में मानसिक यातना से उबरने की चेष्टा की है। कितनी सफल हुई है, यह पाठकगण अपना-अपना अनुमान लगाने के लिए स्वतन्त्र हैं।

प्रस्तुत कविताओं में उन्माद-अवसाद के दो ही रसों को संवारने की कोशिश की गई है। कुछ एक पाठकगण इन संवेगों में देर तक ठहर नहीं सकेंगे। शायद यह भी अनुमान लगा बैठें कि प्रस्तुत कवयित्री अपनी बहन विद्योत्तमा की तरह एक ऐसे विस्फोटक बिन्दु पर पहुंच गई होंगी, जिन्हें आम भाषा में 'पागल'

कहा जाता है। यदि पाठकगण का अनुमान सही है तो इस 'सहोदरा काव्यमाला' का संदेश मनो-रोगियों की मन:स्थिति को जनमानस तक पहुंचाने में सफल होगा। फ्रायड के अनुसार नार्मल (सामान्य) और अबनार्मल में केवल डिग्री का अन्तर है। जो अपनी असामान्यता का साक्षात्कार आत्मचिन्तन द्वारा अंगीकार कर पाते हैं, वही मनुष्य नार्मल हैं।

साधारणतया मनुष्य तनाव का अनुभव होते ही उसका दमन (Repression) करता है या किसी अन्य रक्षा-युक्ति (Defence Mechanism) द्वारा मुक्त होना चाहता है। आधुनिक मनुष्य को विरासत में अनेक धार्मिक अनुष्ठान, उत्साहवर्धक दिनचर्या, योग, दर्शन, स्वास्थ्यवर्धक भोजन, औषधियां, अपने पर्यावरण को सन्तुलित रखने के लिए वैज्ञानिक उपकरण, दिल बहलाव के लिए पेड़-पौधे, पशु-पक्षी, तथा सुख-शान्ति से रहने के लिए परिवार एवं समाज की सुरक्षा मिली हुई है। लेकिन यह सब साधन उपलब्ध हो जाने पर भी आधुनिक युग में मनुष्य उन्माद-अवसाद के मनोरोग से क्यों ग्रस्त हो जाता है? क्यों वह मोह-माया में फंस कर भूल जाता है कि वह स्वयं ब्रह्म बन जाने में समर्थ है? एकाएक वह अज्ञानी, अनन्त, अव्यक्त, अगोचर, सर्वशक्तिमान का अंश होने के ज्ञान को भूल कर अपने आपको ऐसी अविद्या में घिरा समझने लगता है, जहां उसकी बुद्धि कुछ सोच-विचार नहीं सकती। उसकी भूख, प्यास, नींद आदि ऐसी तंद्रावस्था में होती है, मानो वह निष्क्रिय हुए शरीर की यंत्रवत् क्रियायें हों, जिसमें उसकी चेतना का कोई योगदान नहीं होता, अतएव उसमें किसी तरह के रस का अनुभव होने का प्रश्न ही नहीं उठता। किसी प्रकार का कष्ट उतना कष्टदायक नहीं है, जितना सतत् चेतना पर यह अहसास बना रहना कि वह केवल एक जीवित लाश मात्र है। रोगी को मायावी प्रेतात्माओं से घिरी कुछ स्मृतियां अतीत की ओर ले जाती हैं, जहां उसे अपराधबोध की यातना सताने लगती है और कभी भविष्य उसे अन्धकार-पूर्ण गहरे शोक सागर में डूबा हुआ प्रतीत होता है। ऐसी मन:स्थिति में वह मनुष्य किसी शुभ कर्म द्वारा जन्म-मरण की इस बेड़ी को काटने में सक्षम है, ऐसा गूढ़ ज्ञान उस रोगी को देना सम्भव नहीं हो पाता।

ईश्वर की सृष्टि में भी ऐसा समय आता है जबकि संसार की स्थिति अति भयावह हो जाती है। चारों ओर अनाचार और आतंक फैला दिखलाई देता है। उस स्थिति से उबारने के लिए कहते हैं कि भगवान अवतरित होते

हैं। काश मानसिक रोगी इस अधोगति से उबरने के लिए अपनी सघन पीड़ा को किसी अन्य के साथ कह सुना पाता! उसके लिए भी कोई मसीहा धरती पर होता। वह बेचारा तो अपनी वाणी को निर्वाक पाता है। केवल सघन पीड़ा का सम्वेदन उसके मन-प्राण पर छाया रहता है। वाणी ही क्या, उसके समस्त अवयव शिथिल और निष्क्रिय से हो जाते हैं। चेतना में कुछ न कर पाने का अहसास सुबह से शाम तक बना रहता है जैसे मरण प्रवृत्ति (Death Instinct) का उस पर पूर्ण आधिपत्य हो गया हो। अपनी इस दयनीय स्थिति पर करुणा भरे आंसू बहाने के बाद अनेक बुरे-बुरे विचार उसके मस्तिष्क में आने लगते हैं और अन्तर्विवेक पर कठोरता तथा सादीयता (Sadism) छा जाती है। शायद इसी आवेश के वशीकरण में रोगी आत्महत्या तक कर बैठता है।

आजतक बुद्धिजीवी बहस के स्तर पर उन्माद-अवसाद रोग की वस्तु-स्थिति को मनोचिकित्सक समझने में असमर्थ रहे हैं, किन्तु असहाय होकर शोकाकुल मन:स्थिति में बैठे रहना सामान्य मनुष्य का स्वभाव नहीं है। कुछ नहीं कर पाने की स्थिति में वह आत्म-चिन्तन करने के लिए बाध्य होता है। इसीलिए दु:ख की घड़ियां लम्बी प्रतीत होती हैं और ऐसे कटु अनुभव की स्मृति हमारे जीवन पर एक अमिट छाप छोड़ जाती है, जिनकी कल्पना मात्र से सिहरन होने लगती है और मनुष्य दु:ख से दूर भागने की कोशिश में व्यस्त रहता है।

अतएव आत्म-चिन्तन के लिए दु:ख की अनुभूति होना अत्यन्त "शून्यवादी" (Nihilistic) दृष्टिकोण है, तथापि बुद्ध ने एक मृत रोगी और वृद्धा को देखकर काल्पनिक असहनीय यातना से पीड़ित हो अपने दु:ख को जड़ से उखाड़ फेंकने के लिए बुद्ध-धर्म की खोज की। आज भी मानव को निर्वाण-रूपी आनन्द की खोज है, लेकिन उसके पास समय का अभाव है। केवल अपने लिए ही वह तात्कालिक आनन्द चाहता है। वह तपस्या, वैराग्य, करुणा, अहिंसा आदि के मार्ग को अपनाने के लिए तैयार नहीं है, क्योंकि वह जन्मा है बुद्ध, महावीर, नानक आदि से अधिक प्रगतिशील काल में। वैज्ञानिक उन्नति के शिखर पर पहुंच गये मानव को अपने तनावों से मुक्ति के लिए इन्द्रियनिष्ठ और तात्कालिक आनन्द की खोज है, जिसे शराब, नशीली दवा, सेक्स आदि में वह सहज ही प्राप्त कर सकता है। किन्तु जब उसे ऐसे स्वादों में 'रस' नहीं आता तब वह अत्यधिक व्याकुल हो आनन्द की खोज में उठता

है। अधिकतर मनुष्य तो इन्द्रियनिष्ठ मायावी जाल में ही फंसे रहना चाहते हैं और अपने आनन्द में भ्रमित रहते हैं। क्या आनन्द पैसा, शक्ति, संग्रह, हिंसा आदि में है? जीवन को आधुनिक युग में प्रशस्त मार्ग में ले जाने के लिए माना पैसा, संग्रह, सफलता आदि से लगाव होना आवश्यक है, किन्तु एक जुनून या मनो-ग्रस्ति (Obsession) हो जाने से समाज में शोषण, हिंसा, और अपराध फैलते हैं। क्या अति-आधुनिक युग में सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, क्षमा आदि का स्थान नहीं रहेगा? क्या मनुष्य प्रवृत्तिवश दु:ख आने पर ही मानवीय गुण और अवगुणों को परखने के लिए बाध्य होता है? दु:ख की अनुभूति में ही वह प्रकृति की गोद में सिर रखकर आंसू बहा पाता है। कल्पना के पंख लगाकर वह अपने को और अपने दु:ख को अलग करके देख पाता है। किन्तु जो पीड़ा के स्रोत तक जाने का साहस जुटा पाता है, वही मनुज भय से निकल पाने के बाद 'अभय' हो पाता है। जैसे हर अन्धेरी रात के बाद सूरज की किरणें फूटती दिखलाई देती हैं, सहोदरा काव्यमाला इसी चिरन्तन सत्य को उद्भासित करने की दिशा में एक लघु प्रयास है।

मानव की अमूल्य निधि तो उसका साहस और आत्मविश्वास है, जिसकी प्रेरणा से हर प्राणी अपने वातावरण से जीवन-पर्यन्त संघर्ष कर अपना प्रगति मार्ग प्रशस्त करता है। चाहे वह भयंकर रोग हो, बंजर रेगिस्तान या बर्फीली चट्टानें या भुखमरी या अन्य प्राकृतिक आपदा या मनुष्य द्वारा स्वयं फैलाया आतंकवाद। यदि मनुष्य अपनी अस्मिता को मिटाने के बजाय, विनाश मार्ग से हट कर आत्मचिन्तन करे, अपने क्रोध, हिंसा, दु:ख, प्रतिशोध आदि विकारों के स्रोत को साहस-पूर्वक देखे, समझे और परखे तो अवश्य ही उसे रसभरा आनन्द मिलेगा, जिसकी खोज में वह दर-दर बाहर भटक रहा है। इस तरह के अन्त: निरीक्षण द्वारा चेतना में उभर कर जो भी कविता, चित्र, संगीत आदि की उपलब्धि हो उसे समाज के सामने रख देने की प्रक्रिया में अनेक तरह की परिष्कृत ललित-कलायें उपजती हैं। शायद दर्शन और अध्यात्म की खोज भी इसी रस की उत्पत्ति से सम्भव हो पाती है। वेदों में उसे 'रसो वैवै स:' कहा गया है। रस से भरी प्रकृति, जल, वायु, पृथ्वी, आकाश द्वारा हमें जीवन प्रदान करती है। जो कविता बन मानसिक रोगी की समस्त कलुषिता को 'खुशबुओं की लपट' बन (प्रथम कविता विद्योत्तमाजी की इस सहोदरा काव्यमाला में) पाठकों के समक्ष है।

कवि सम्मेलनों का आयोजन कविता की रसोत्पत्ति से श्रोताजनों को आनन्द से ओत-प्रोत करने हेतु होता है, किन्तु इस सहोदरा काव्यमाला की कवयित्रियों ने अपनी कृतियों को किसी भी गोष्ठी में जाकर सुनाने का गौरव नहीं प्राप्त किया, क्योंकि उनके परिवार के अधिकतर सदस्य अपनी कवितायें लिपिबद्ध कर देने में सक्षम होते हुए भी, उन्हें कवि सम्मेलनों में जाकर सुनाने से कतराते थे। उन्हें भय था कि कहीं वे कविता लिखने-पढ़ने के शौक में उच्चस्तरीय वैज्ञानिक शिक्षा प्राप्त न कर पायें।

इस सहोदरा-काव्यमाला के प्रस्तुतीकरण में प्रेरणादायक सहयोग हिन्दी के विद्वान् श्रीयुत् बैजनाथ प्रसाद शुक्ल 'भव्य' और डॉ. रामश्रय 'सविता' से प्राप्त हुआ है। प्रस्तुत कवयित्री के अनुसार नई कविता अपने मुक्तक रूप में मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण की एक सशक्त चिन्तनधारा है अतएव क्यों न मनोचिकित्सक कविता की रसोत्पत्ति से उन्माद-अवसाद की मनोग्रन्थि को सुलझाये? आशा है, पाठकगण इस 'सहोदरा काव्यमाला' को पढ़कर स्वयं निर्णय लेंगे कि ऐसी कविता कवि का प्रलाप मात्र है, अथवा इस तरह का कवितामयी चिन्तन-धारा साहित्य जगत में अपनी अमिट छाप छोड़ जाने में सक्षम है।

भवदीया

डॉ. शकुन्तला दुबे
संचालिका,
मनोबल स्टडी सोसाइटी

२३८, मुनीरका विहार,
नई दिल्ली-६७

१८ जुलाई, १९९६

भूमिका

सहोदरा : एक नए सफर की शुरुआत।

'सहोदरा काव्यमाला' डॉ. शकुंतला दुबे का एक आत्मविश्लेषण।

सहोदरा काव्यमाला जानी-मानी वरिष्ठ और अनुभवी मनोवैज्ञानिक डॉ. शकुंतला दुबे का पहला कविता संग्रह है और यह इनकी गहन चिन्तनधारा और सुस्थिर अध्यवसाय की एक झलक के रूप में प्रतिष्ठापित होगा। यह पुस्तक उन्होंने अपने दो उपन्यासों 'चेतना की परतें' और 'बन्नी' (एक कुत्ते की जीवनी) के बाद लिखी है। पहला उपन्यास मनोरोगियों की समस्याओं पर है, 'बन्नी' जबकि इसका जीवन में एक प्राथमिक अध्ययन और एक पालतू कुत्ते के मनोविज्ञान पर है। 'सहोदरा' में इन्होंने अपनी कविताओं द्वारा मानव-मस्तिष्क की दूरस्थ एकान्त की गहराई तक जाने का प्रयास किया है। यहां उन्होंने संघर्षरत विश्व, मनोचिकित्सा-विज्ञान की चिकित्सा कुशलता के जरिए लालायित मानव हृदय में जाने का प्रयास नहीं किया है, बल्कि कविता के द्वारा लालायित समचित्तता के लिए मानव चेतना के विश्लेषण का प्रयास किया है। चिकित्सा कुशलता और काव्यत्व इसमें दोनों घुलमिल जाते हैं और चिकित्सक तथा कवि एक दूसरे के पूरक प्रतीत होने लगते हैं।

इन कविताओं को उन मनोरोगियों के दु:खों को दूर करने के प्रयोजन से लिखा गया है, जो इस आधुनिक भौतिक दुनिया में अपने को अकेले और सताए हुए महसूस करते हैं। शायद इसीलिए इन सभी कविताओं की बुनियादी बात प्रतिशोध को प्रेम में बदलना है। पाठक के मन में इनसे सहानुभूति की भावना पैदा नहीं होती है, बल्कि परानुभूति की भावना जाग्रत होती है, अत: भावना को प्रकट करने से कभी-कभी मानव अनाप-शनाप बोल जाता है, लेकिन डाक्टर, कवि से अभिभूत नहीं होता है और कविताएं या तो न्यूनोक्ति हो जाती हैं या शक्तिशाली, लेकिन भावनाओं को नियंत्रित करती रहती हैं। मानव-चेतना के परदे का अनावरण हो चुका है और जो तस्वीर उभर कर सामने आई है, वह निराशाजनक है, जिसका अन्त मृत्यु है।

इन कविताओं के माध्यम से अवरुद्ध मानव-भावनाओं की चुप्पी तोड़ने की संभावना के बारे में बताया गया है। मानव-व्यक्तित्व का खंडित हो जाना या उसमें असामान्यता पाया जाना आमतौर पर असमानता से होता है, जो मानव और उसके पर्यावरण के मध्य पैदा होती है। कवयित्री ने सामान्यता का उल्लेख भी उसी संदर्भ में किया है, जबकि असामान्य परिस्थितियों को स्वीकार किया जाये। जब कभी स्वयं और समाज के बीच अन्तर बढ़ जाता है, उस स्थिति में कविता मरहम का काम करती है। कविता आत्माभिव्यक्ति, आत्मावलोकन और आत्मविश्लेषण के जरिए मुक्त होने का प्रयास है, जिसका परिणाम आत्मस्वीकृति के रूप में मिलता है।

मानव-हृदय में समाई वेदना को शब्दों में व्यक्त किया गया है। कभी-कभी मनुष्य मदिरा, नशीली दवाओं या वासना की शरण लेने का प्रयास करता है, लेकिन ये क्षणिक होती हैं। मानव-जीवन में शांति और खुशी की लालसा कभी पूरी नहीं होती है। यहां कविता रूपी विकल्प मनोरोगियों का बचाव करता है।

एक औसत पाठक इन कविताओं के माध्यम से दूर तक नहीं जा सकता है। वह एक ही समय में दो नावों में नहीं तैर सकता है, क्योंकि ये कविताएं अलग-अलग विचारों और अलग-अलग अनुभव की हैं। ऐसा भी प्रतीत होता है कि आधुनिक मानस के लिए अति भावुक हैं। कभी-कभी मनोविज्ञान के गढ़े हुए शब्दों को समझना कठिन होता है और इन्हें समझने के लिए शब्दकोश का सहारा लेना पड़ता है, लेकिन ये अपने पीछे वांछित विशेष प्रभाव छोड़ देती हैं।

ये कविताएं गीतमय हैं और काव्य के पारंपरिक तत्वों के अनुरूप हैं। फड़फड़ाते हुए पंखों वाले 'श्वेत कपोत' के प्रतीक का प्रभावी ढंग से उपयोग मानव के उस उत्कंठित हृदय के लिए किया गया है, जो जीवन के आवेगहीन दृष्टिकोण को समझने में अक्षम है।

इनमें से अधिकांश कविताएं विलाप, यंत्रणा और उत्कंठा के बारे में हैं। सर्वप्रथम कविता, "खुशबुओं की लपट" उस अगोचर संबंध की अभिव्यक्ति है, जिससे डॉ. दुबे की छोटी बहन, जिसको यह पुस्तक समर्पित है, लिखी थी, वह स्व. विद्योत्तमा कवयित्री के मस्तिष्क के परितोष और उनके एकाकीपन की अनिश्चित अनुभूति का पता चलता है। दूसरी कविता "अनुराग" से उस परितोष का उद्घाटन होता है, जिसकी उपलब्धि अनुराग से हो सकती है, परन्तु यह संभव नहीं है, क्योंकि अनुरागी (ईश्वर) जीवन के दूसरे पक्ष में निवास

करता है। 'निष्क्रिय प्रतिरोध' वंचित आत्मा के लिए यंत्रणा है। इस आत्मा में अनुराग के मिल जाने से आनंद प्राप्ति में 'स्व' स्वतः ही भयंकर बाधक बना हुआ है।

'अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष' में कवयित्री कहती है—'पथ खो चुकी हूं, पर पाथेय देने जा रही हूं'। इस अनुभूति से 'स्व' के उद्बोधन का पता चलता है। 'उत्पीड़न' और 'अधिस्वर' जैसी कविताओं में भी मानव-संबंधों के परितोष की तीव्र उत्कंठा के मूल भाव स्थित हैं। 'अकर्मदोष' से अकर्मण्यता के दोष की अनुभूति होती है। 'अनहम्' नामक शीर्षक की कविता भी वंचित आत्मा की तीव्र उत्कंठा की अनुभूति है। "विभ्रमाभास" भी आत्माभिव्यक्ति का ही प्रयास है। 'मनोजनन' भी इसी भाव-प्रवाह की कविता है। इस कविता से भी स्पष्ट तथा और प्रभावोत्पादक ढंग से उत्कंठित मानव-हृदय के लिए प्रयुक्त पंखों से फड़फड़ाते हुए श्वेत कपोत के प्रतीक का आभास होता है। इन सभी कविताओं से व्यथित मस्तिष्क की "मूक व्यथा" व्यक्त होती है।

इनमें से कुछ कविताओं की रचना कवयित्री के न्यूयार्क प्रवास के दौरान की गई है, जो कि स्थानीय रंगों और नए स्थान के अनुभवों से ओतप्रोत हैं। इनमें से 'नियत त्रुटि' नामक कविता से पता चलता है कि किस प्रकार निष्क्रिय भावनाएं जीवन में निश्चलता उत्पन्न करती हैं। 'पूरक' और 'प्रतियुक्ति' जीवन में ध्वनित होने वाले आशा के स्वरों और परितोष के समान हैं। 'अन्वेषी उद्बोधन' नामक कविताएं मानव अन्तःकरण के उद्बोधन के माध्यम से आत्म-अनुभूति विषयक हैं।

अंतिम कविता 'आत्महत्या' से पता चलता है कि जीवन के चित्रपट पर मृत्यु किस प्रकार उसे ढंक लेती है और किस प्रकार समस्त खुशियों के रंग कालिख में परिवर्तित हो जाते हैं।

ये कविताएं निश्चित रूप में पठनीय हैं, क्योंकि इनमें काव्यात्मक उत्कृष्टता से कहीं अधिक उपशामक प्रभावों का समावेश है। कवयित्री का प्रयोजन उत्पीड़ित मानव-आत्मा को परानुभूति कराना है, जैसा कि उसने अपनी पुस्तक के प्राक्कथन में बताया है। अतः कवयित्री इस कार्य को सफलतापूर्वक करने के लिए बधाई की पात्र है।

शुभकामनाओं सहित

—इन्दु सुन्दरी

अनुक्रम

1

खुशबुओं की लपट

तुम्हारा मिलना महज़ एक इत्तफाक
एक अदद, अलबेला चेहरा तुमसे जुड़ा
सभी कुछ गरिमामय, इसी सन्दर्भ में
लगी हूं बतियाने, डूबते सूरज में
चाय की चुस्कियों के साथ
लगी हूं रचने बहारों से गीत

खुलते, बन्द होते दरवाज़ों की
झांकती सम्भावनाओं व प्रतिक्रियाओं
को-ओढ़ती संवेदनाओं के धरातल पर
हिलती डाली पर अलसाती कोपलें
मेरे अंत:करण में फैलने लगीं

फूल बन खिलने लगीं, तुम्हारी धुंधली दृष्टि
मूक संवाद सम्पूर्ण वक्तव्य से जान पड़े
मुझ तक खुशबुओं की लपट, स्वीकृति सी
लगने लगी मेरे एकाकी मन में
कुसुम वसंत उग आया, तुम्हारे व मेरे बीच कहीं।।

(स्व. विद्योत्तमा दुबे)

अनुराग

मेरे आलम्बन, मेरे अभिसार
अब तो खोलो, जीवन में अपने द्वार
जीवन के सूनेपन में बिखरा यौवन भार
सौंपूँ किसको अन्तस्तल के अनमोल हार
सिसक रहा है, सूनापन, पर आँसू पोछे कौन?
जब विरक्त प्रकृति के हो तुम उस पार

मेरे आलम्बन................

निशा गई, उठ चला, जीवन से अभितृप्त प्यार
आंचल में उत्सुकता, भावों में कोमलता
नयन की गहराई मेरी पहचाने कौन
जब खड़े प्रिये, तुम जीवन के उस पार

मेरे आलम्बन................

3

भावावेश

किसी के राग का बन्धन, जीवन का श्रेय बन गया

आज युग के मूल्यों की कगार
बह जायेगी प्रणय के प्रवाह में
मत पूछो राही पीछे मुड़कर
आता बसंत जीवन में एक बार
बस मन की अमराई में पंख पसार
लय हो जाने दो यह अनुराग
अनुरंजित दिशायें दे रही अभिनन्दन
उठो प्रवासी भर दो मेरी गोद में, प्रकृति के ये अनुहार
न जाने कब रूठी लालिमा कालिमा बन उठेगी
अतृप्त प्यार का सघन अन्धकार

निष्क्रिय प्रतिरोध

याद तुम्हारी तब आई, जब जग के द्वार बन्द हुये

उषा की लाली ने पेड़ों की कोपलों को चूम लिया
हल्की सिहरन करते पवन ने एक झोका लिया

याद तुम्हारी..............

मानो या न मानो प्रवासी, सुधबुध खो बैठे हम तुम पर
फिर भी यह प्यार अनोखा तुम्हारा केवल टीस लाया
मुझको पीड़ा देकर तुमने अपना प्रेम निचोड़ लिया
अपने अगणित आंसू बिखरे भी, तुम तक क्यों पहुंच न पायी

याद तुम्हारी ....

यदि तुम तक कोई पहुंच न पाये राही तब
उस विरह वेदना का साक्षी बन कह सकेगा
बूंद-बूंद मिलकर बनी यह नदिया अस्तित्व मिटने तक
मन के सन्ताप की जीवन के नैराश्य की

याद तुम्हारी ....

अतींद्रिय प्रत्यक्ष

ज़िन्दगी भी क्या जो प्रीति का व्यापार करती

छलना हृदय की साकार होकर
भावनाओं का आर्त्तनाद करती
अविरल अश्रुमाला पहन कर
भाल पर, हृदय लहू का तिलक धारे
विजयिनी मैं जा रही विश्व से विजय गान सुनने
स्वयं के उपहास का या मूक पीड़ा के परिहास की
दुन्दुभी यह क्या? लगता है कोमलता सिसकती

ज़िन्दगी भी क्या ....

मीड़ में कसक भरने, लुट गया राग का शृंगार सारा
वीणा के तार छूटे, जल उठा स्वरों का संसार सारा।
इस प्रलय में भी जाने कौन उपहासी, अट्टहास करता जा रहा है
बेबसी भी क्या? जीवन उल्लास से खिलवाड़ करती

ज़िन्दगी भी क्या ....

अन्धेरी रात में उस दीप की टिमटिमाहट
सहस्र दीपों की ज्योति दे रही थी, बुझ चुकी है
फिर भी न जाने कौन शक्ति आह्वान दे रही है
क्षितिज से टकरा कर किसी के हृदय की हूक आती
पथ खो चुकी, पर पाथेय देने जा रही हूं
भूल भी क्या? जो शूल से चेतना में न गड़ती

ज़िन्दगी भी क्या ....

उत्पीड़न

दिन और रात यों ही ढलती जाती,
मैं नदियों की कूल बनी उस पार न हो पाती।
चंचलता का सहारा लिये, क्लान्ति लिये जीवन भर की
ढूंढ रही जीवन के हर कोने में मैं मन की अमराई
पर धूप कहां और छांह कहां, अब तक जान न पाई

दिन और रात ....

वासना का दास जीवन, लय प्रलय में हिलोर खाता
युग युगान्तर की बनी श्रृंखला में, मेरा व्याकुल मन एक उलझी कड़ी
जो मैं धीरज से पकड़ कर, सुलझा न पाई

दिन और रात ....

भ्रान्ति है मेरी कल्पना या स्वयं कल्पना की भ्रान्ति हूं
सिसकते अश्रु भी मेरी वेदना के लगते हैं पराये से
भावों के व्यापार में, सदा मैं बाजी हारती आई

दिन और रात ....

चेतना के ज्वारभाटे को साथी तुम पहचानो कैसे
पर सिक्त हुये हैं प्रति क्षण इन सांसों के फेनों में आंसू मेरे
जिन्हें अनमोल मोतियों को ढूंढ जग को दिखा न पाई

दिन और रात ....

परिताप

संध्या की लालिमा ये प्रश्न लाई क्यों?
वरदानों से पा न सकी जिसको, अभिशापों से मैंने पाया
आंचल भर मोती जिसको समझा, पत्थर कंकड़ कह जग ने ठुकराया
उन पर समाधि बना, नित्य फूल चढ़ाती आई क्यों?
संध्या की ....

पथ के राही सब पहुंच गये, अब तक पन्थ निहारती जाती
गोधूलि की बढ़ती कालिमा मुझे प्रातः का सन्देश लाती
कल्पना की खोज में मैं स्वयं को भुलावा देती आई क्यों?
संध्या की ....

दो हृदयों की भावनाओं में हिल्लोल होता
प्रीति का चहुं ओर गुलाल उड़ता
प्रतिक्षण मन के बदलते स्वरों में
जीवन रागिनि का विस्तार होता
स्वर छेड़ कर गीत की चिन्ता आई क्यों?
संध्या की ....

सघन अन्धकार में शून्य पर पग बढ़ाये
हृदयों की धड़कनों में आशा का वितान बांधे
चिरसंचित विश्वास से राही का हाथ थामे
कुछ क्षण साथ चल, थक कर बैठे स्थान को
गन्तव्य का विराम मानती आई क्यों?
संध्या की ....

अधिस्वर

युग-युग की प्यासी, फिर भी पी न सकूंगी जल तुम्हारा
जीवन लय में गर्म उच्छ्वास-सी, कम्पित अधरो में गर्म उच्छ्वास-सी
भौरे के गुंजन से मुरझायी कली, रिक्त मदिरा की प्यास सी
ज्वाला सी धधकती किन्तु रिक्त न करूंगी पात्र तुम्हारा
पतझड़ में व्याकुल फिर भी सहन न कर सकूंगी मन्द समीर तुम्हारा
आँधी सी भटकती फिर भी उड़ा न सकूंगी वसन्त तुम्हारा
निमन्त्रण मत दो इस दावानल को प्रिये, जो जीवन की हरियाली जलाता आया
अरण्य में जलकर राख हो जाने दो जो प्रकाश बन धुआँ फैलाता ही आया

अकर्मदोष

बीती बातों में उलझे मन को कब कौन सुलझा पाया
आज हर सुलझन, उलझन की कड़ी बनती
नींद में अलसाई आँखें आँसुओं से भीगी लगतीं
जीवन में सब कुछ खोकर, कब कौन फिर से बाजी लगा पाया
बीती बातों में ....

माना हर कली के यौवन पर भौंरा नहीं मँडराता
वसन्त में हर डाली पर कोयल कूक नहीं मचाती
पर पतझड़ आने पर कब कौन अपना पराग रख पाया
बीती बातों में ....

ओस-सी कोमल भावना अपनी, बर्फ सी सख्त चुभती मुझे
गर्म उच्छ्वास भी आज, लगती अन्तिम ठण्डी साँस-सी
तब रक्त आशा-किरण को अन्धकार में कौन देख पाया
बीती बातों के ....

किसी की याद की इतनी तपन है कि
वाष्प बन उड़ गया है जीवन का उल्लास सारा
ये अनुभव भी बादल बन बरसेंगे इस आशा में कौन खो पाया
बीती बातों के ....

प्रेक्षक

मैं आज आँचल पसारे

ढल गया साँझ का सूरज
पंछी चले गये अपनी राह सारे
मैं उनींदी खड़ी आशा में
किसी की प्रतीक्षा का वितान ताने
विलुप्त प्रकाश की किरण को
अन्धकार में संजोने

मैं आज आँचल पसारे

द्रुति गति के चपल वेग से
बहती नदियों से मैं विलोड़ करती
अशान्त चपलराह में मैं फूल रखती
तैरती पंखड़ियों की नौका बनाये
पुलिन दीप उस पार करती

मैं आज आँचल पसारे

गगन से माँगती आई
शोले की आग से प्यास बुझाने
विकल हो नैराश्य की तपन में, विरह की धूनी रमाने
फिर भी जाने क्यों क्षितिज को अनुराग से डूबा समझती

मैं आज आँचल पसारे

नियति के व्यापार को, धोती आई अश्रु से जल समझ कर
आशा से मन में लौ लगाये बैठी रही स्नेह की बाती सजाये
प्रतीक्षा की विफलता में इस मौन को तुम्हारे मान समझती

मैं आज आँचल पसारे

विरोधी

नदी के कूल, होते क्यों दूर?
उल्लास लिये उमंग लिये
वेग में ही नदियों के
खो जाते क्या, मिलन की आशा लिये?
        नदी के कूल ....
अतीत का सत्य, कालचक्र का ग्रास
आशा वितान स्वप्निल स्वर्ण जाल
आंसू पिरो कर ही बिखर जाते क्या, वरदानों की आशा लिये?
        नदी के कूल ....
विरह की बाती, स्नेह रिक्त फिर भी जलती जाती
निराश आशा अभिशाप लिये, प्रतीक्षा में ही क्या
बुझ जाती चरण-धूलि की आशा लिये।
        नदी के कूल ....

मनोविलास

पल-पल संजोती आई बाती, साँझ भये फिर भी दीप जला न पायी
सघन अन्धकार को देख रही, बढ़ता क्षितिज पर
पल्लवों की तरुणाई को कालिमा में बदलते
फिर भी नैराश्य मन की इस व्यथा को
विकलता के प्रतिक्षण बदलते रूप में सम्भाल न पायी
गगन को देख रहे टूटते तारों की परछाईं में
बीती बातों का सहारा लेकर बिखरेती अश्रु कणों को तारे समझ कर
आज आँचल पसारे, गिन रही वे टूटे सितारे
जिन्हें वेदी पर श्रद्धा बन गूंथ न पायी

अभिविन्यास

कैसे भूलू तुमको, जब तक भुला न सकू अपने को
सूनी इन जीवन राहों में छा जाती हरियाली
जब याद तुम्हारी आती
इन राहों का अन्त जब तक खोज न पाऊ
कैसे भूलू ....
आँचल का छोर उड़-उड़ कर बीती बातों की यादों में फँस जाता
कभी तुम्हें भी दे रहा होगा छाँह का साया
जब तक यह आशा हृदय से मिटा न पाऊ
कैसे भूलू ....
गगन से टकरा कर लगता तुम्हारे हृदय की हूक आती
जग के कोलाहल में भी वह सम्मोहन टूट न पाता
तब तटस्थ हो अपने अकेलेपन को कैसे दुलराऊ?
कैसे भूलू ....
निस्तब्ध, सघन अन्धकार में प्रकाश किरण-सी चौंध जातीं बीती बातें
ठगी व्याकुल हृदय में स्वर्णिम स्वप्निल जाल में उलझ जाती
जब तक इस भ्रम जाल से निकलने का दूसरा आलम्बन न पाऊ
कैसे भूलू ....
भ्रान्ति हो या सत्य, इन्हीं विचारों के झंझावातों में
तुम्हारी याद का सहारा लेकर सतत् आगे बढ़ रही हूं
क्षितिज पर लग रहा है प्रिये, तुम खड़े हो अंक भरने
जब तक उद्‌भ्रान्त मन के औत्सुक्य को बुझा न पाऊ
कैसे भूलू ....

अनुताप

किसी की याद में जब मन रोया, पाया जग ने बस, खोया खोया
भावों के क्रन्दन को अविरल आँसुओं से दुलराया
अधर की प्यास को, गर्म उच्छ्वासों से दबाया
इस व्याकुलता में एक क्षण ही बिताया, पर युगों तक उसका अन्त नहीं पाया
किसी की याद ....

विजन अन्धेरी रात को, हृदय मं आशा-दीप जलाकर उजियारा
निराशा के हर झोके को पूर्ण समर्पण के पट से हटाया
मिलन-बेला का जब वरदान माँगा, शून्य को अट्टहास करते पाया
किसी की याद ....

अनहम्

शिखा-सी क्यों जल रही हूं?

कोलाहल जगत का सागर सा उमड़ता आता
लहरों में खो जाने को व्याकुल मन मेरा हो जाता
निमग्न हुई, फिर बड़वानल सी उतराती
संतप्त हृदय की आग मेरी और धधक जाती

शिखा-सी क्यों ....

बादलों-सा लगता हल्का जीवन का अपनापन
कोयल की कूक-सी हृदय की हूक लगती
तिमिर अन्धकार में निष्प्राण से लगते बढ़ते चरण
मिलन की आशा फिर भी क्यों असम्भव न लगती

शिखा-सी क्यों ....

बिन्दु के आकार सा नगण्य जीवन
विषमताओं से बढ़ाता जा रहा अपनी परिधि आकाश के छोर सी
इस विकलता में मेघ से अश्रु मेरे झर-झर बरसते
प्रिये, प्राण मेरे तुमसे मिलने को क्यों तरसते

शिखा-सी क्यों ....

प्रेक्षण-परास

मेरा मन स्वप्नों के देश चले

सागर के ऊपर फैला

लहरों के आंचल में खोया

गिरता पड़ता असीम में डूब चले

मेरा मन ....

हवा के झोके में हरियाली बन सिहर उठा

कोयल की कूक में पी की याद में सिसक उठे

आँसू बन झर-झर मेघ-सा बरस पड़े

मेरा मन.................

चिमनी से धुँआ सरीखा पीड़ा फैलाता जाये

कमल में बन्दी भौंरे-सा गुन-गुन गुनगुनाता जाये

नदिया-सा कल-कल करता आगे बढ़ता जाये

मेरा मन ....

प्रतिपल बढ़ती समय-गति में खो जाये जीवन विषाद सारा

शावक कपोत-सी थिरक उठूं बरस सकू नन्हीं बूंद-सी उस पार

मेरा मन ....

17

सर्वज्ञता

हवा के एक झोंके में, कलन्डर के पन्नों सा
फड़फड़ा उठा मेरा मन किसी की याद में
क्यों, किसलिये, न पूछो इतने कड़े प्रश्न नादान
मन की उमंगों में विह्वलता जैसे हो उतरती नदियों के कगार
पर कागा पर करूं कैसे विश्वास, पहुंचा दे जो पाती उस पार
घूर रहे थे डाक, तार, बेतार, केवल बौखलाहट बढ़ाने के लिये
अपने दम्भ के जाल में मकड़ी की तरह फंसाने के लिये
अन्तरतम की पुकार को भी जब पहुंचा न सके प्रिय के द्वार
भिगोकर करे केवल अपनी सेजें गीली, गगन के तारे गिन-गिन
गर्म उच्छ्वासों से जल उठे अम्बर धरती, पार देखो क्षितिज में
अन्धकार फैलाता हुआ सूरज कहीं विलीन हो गया है
कल आने का वादा कर के।

मनोग्रस्ति

कौन व्यथा, उर की आकुलता
क्यों री, होती बावली-सी
आते होंगे मेरे प्रिय द्वार
चल उठ, सजायें बन्दनवार

भावुक मन, करता क्रन्दन
सुबुक-सुबुक कर सो जा
क्षण क्षण बन युग बीते री
बीत जायेगी यह विरह की भी रात

रिस रिस कर झर रही आकुलता मन की
पिघल रहा मोम-सा यह तन
प्रलय हो जाने से पहले ही क्यों री
माँग रही तू सृष्टि के वरदान
परिवर्तित जीवन माँग, साँस प्रति साँस में

पैग बढ़ाता जाता केवल संसार
अन्तस् पर पड़ी अनुराग-छाप
हर साँस के स्पन्दन में रिसती जाती गहराई में
अनुराग तो साकार, क्षितिज के पार।

19

विसर्जन

मेरे अन्तस् की पीड़ा
परछाइयाँ मायावी संसार की
फिर भी क्यों लगता, दूरी इनमें इतनी
जितनी गगन संसार की
झर-झर कर आँसू बरसते
उर की वेदना रिस-रिस कर
स्मृति पटल पर अवशेष न हुई
सीलन बनकर चेतना पर टप-टप रही टपकती

विस्थापन

कौन स्रष्टा, कौन द्रष्टा, कौन भोगता?
इस काँव-काँव में हुआ व्यथित मन मेरा
उर की तो हर एक कड़ी स्निग्ध अनुराग से जड़ी
फिर दार्शनिक हो, क्यों पूछ रहे? जीवन मानव निधि है
बहाव में जैसे नदियां बहतीं।

पहाड़ पर डूबता सूरज, अपनी लालिमा से लगता आग में तपता
काल ग्रसित-सा अन्धकार में सदैव के लिये खोया
प्रिय वैसा ही सिमट गया तुम्हारे विरह में मेरा अहं
व्यथित वेदना गल गई, उल्लास सारा चकनाचूर हुआ
मिलन की आशा इस नैराश्य में लुप्त हो गई कहीं।

व्याप्ति

चेतना के अन्तराल की गहराइयाँ, चक्रव्यूह सी लगतीं आज
क्रन्दन करती फिर भी थिरकती जातीं
किसी धुरी पर बैठी नचा रही हो जीवन-लिप्सा
धँसती जाती गहन गुफा में जिनकी सीलन में
रपट-रपट कर हाहाकार करता अहं मेरा

चेतना के ....

स्मृतियों की चकाचौंध में जैसे चांदी के सिक्के भूखे पेट को लुभाते
कल्पना के स्वप्निल जाल में, जीवन-उल्लास बढ़ता ही जाता
क्षितिज पर देश काल के पार-अनुराग साकार लगता
बस बंध जाता इस आशा में जीवन जैसे मृग बहेलिये के जाल में

चेतना के ....

उद्देश्यहीन

असीमित लगता ज़िन्दगी का दायरा आकाश की परिधि-सा
किन्तु उतना ही शून्य जैसे हों ग्रीष्म ऋतु में आये बादल दो चार
तन मन धन जीवन का न्यौछावर करने में
उड़ गया ममत्व मेरा दूर कहीं क्षितिज के पार
मैं पंथविहीन उद्विग्न हुई जल बिन मछली-सी तड़पती
जीवन की रेल-पेल में बढ़ती जा रही बस चढ़ने के लिये जैसे
लहूलुहान हुई वृद्धा, बस छूट जाने पर भी हाहाकार करती
मानो संसार के व्यापार में व्यवधान डालने के अपने प्रयास में
अपनी चोट के मापदण्ड से दूसरों का आकर्षण पा, अस्तित्व सार्थक करती
भीड़ सिमट जाने पर, खड़ी मूक कुछ दूर जा सोच रही
क्या कोई दूसरी बस आकर उसे अपने गन्तव्य तक पहुंचा देगी?

मानक

आँसू की बूंद में
घनत्व किसी के असीम प्यार का
बरबस ही जब वह गिर पड़ी
लगता कुछ मुझको ऐसा
सार यही मेरे सीमित प्यार का

चिर परिचित पद चाप सी
आशा मेरी अचेतन से उठ पड़ती
खिल उठती हरी धूप बन
वर्षा के बाद सूखी घास

रोष

बन्धन मन के कसे तन में
कुछ ऐसे कसमसाते
जैसे लोहे की जंजीर
बड़े जहाज में बंधी हुई
विशाल फैले समुद्र की सतह पर
सतत चोट करती
फेनों को छर-छर कर, चकनाचूर करती
अगणित कणों में बँट, अनन्त की सीमा में
विलुप्त हो जाती आत्मसात होने के बाद
उत्पीड़ित मन का कसाव
अश्रु कणों में विकीर्ण हो रहा
किन्तु लौह पुरुष सा ममत्व मेरा
टूट रहा असहनीय वेदना के आभास में
क्योंकि ज्योति पुंज की लौ खोज न पाई युग-युगान्तर तक
इस सघन अन्धकार में कौन आशा-किरण बन
कौंध कर, चौंका कर रख जाती मुझे
शेष जीवन बढ़ रहा एक विवशता सा उसी ओर

प्रतियुक्ति

सुबक-सुबक कर रोयी मैं आलि, भोर होने तक
प्रिय दूर, सघन अन्धकार
हृदय के अन्तराल से ज्वालामुखी धधकता
चेतना की सतह पर सीमाएं न रहीं अब
जीवन गति, समय संसार की सब
अनन्त हो जाने पर हो जाती होंगी नगण्य
किन्तु जीवित रहने में भावनाओं का आर्त्तनाद
पिघल रहा है कच्चे लोहे के पिण्ड सा भट्टी में
प्यासा पथिक प्यास में सागर तट पर
बालू में लिपट बना लेता अपनी समाधि
सागर की लहरें उसे अपने में समेट
ले जातीं जल से सिंचित करने के प्रयास में
बेसुध पथिक की जल की प्यास अवशेष हुई
समझी री आलि, तू प्यार की परिभाषा को
गरिमा प्यार की जो जला रही तुझे तिल-तिल कर
जलती जलती जा आलि, जब तक न अवशेष हुई

प्रतिमान

करुणा का वरण हुआ किस के साथ?
पूछ न री, ये हैं प्रश्न नादान

देखा तूने शावक कपोत को शिखा में अनायास आ झुलसते
धूप की तपन से मरुभूमि को अगणित कणों में खण्डित हो तरसते
तिल-तिल कर समय की भट्टी का ताव बढ़ता जाता
कौन इधर उधर से आकर उसमें ईंधन झोंक जाता
भय, अहंकार, ममत्व और जीवन लिप्सा के टुकड़े
विरह की तपिश में अंगारे बने ऐसे धधक रहे हैं
कुछ अवशेष न रहा अपना कुछ ज्ञान कहने के लिए आज

संतनन

मन त्रिकोण के, विकीर्ण हो बिखर गये कण-कण
प्रपात से झर रहे उन्नत चट्टानों से टकरा-टकरा कर जल कण
उच्छल तरंग आकाश को चूमने का प्रयास करती

मेरे मन की उमंगों की तरह टूट-टूट कर विफल हुई गिरती पड़ती
वास्तविकता की उन्नत चट्टान से आ मिलती समय की गति के आक्रोश में
अस्तित्वहीन हो जाते जलकण सारे, एक ही आघात में

अहं पर यह गहरी चोट घिस-घिस पर खींच गई अनेक
विवशता, घुटन और नैराश्य की लम्बी लकीरें
कौन मिटा सकेगा उन आकारों को, जिन पर जमी काई ने
उस मूक व्यथा की अनुभूति को न होने दिया अवशेष, जड़ित होकर

करुणा-प्रयोजन

कुछ स्मृतियों को अपनी चेतना की गहराई में जाकर डाल आयी
घुटन असहनीय, ऊबकर, ढेर से अश्रु बहा, स्वस्थ हुई
लगा समय की गति में मन का सैलाब बह जायेगा
यह प्रतीक्षा आतुरता से बितायी, लेकिन अचानक
वे स्मृतियाँ, मस्तिष्क पटल पर वेग से आ छटपटाने लगीं
मेरा व्यक्तित्व उन खोई स्मृतियों को वैसे ही कस कर पकड़ने लगा
जैसे मेले में खोया बालक अपनी माँ को मिलकर रोता गया
लाख दुलराने पर भी वे स्मृतियां, अपना क्रन्दन करती रहीं
अन्तरतम के ममत्व पर अपना एकाधिकार जताने के लिए

दुर्भीति

एक कड़वी अनुभूति मन पर सिलवटों-सी उभरी हुई
कितनी बार चाहा मैंने, गर्म इस्तरी कस कर फेर दूं
पता नहीं क्यों इस गुंफित मन को लिये मैं हाटबाट घूम आई
अपने को ऐसा हास्यास्पद बनाने में मज़ा आ रहा क्यों?
शायद ऐसी अनुभूति का लेखा-जोखा, विरहिणी की गाथा से है परे
जो आज के युग में स्वयं को ही चक्र-व्यूह बन निगलने लगता है

अलिप्सा

विभ्रान्त मन खिल उठा सूरजमुखी सा
आशा किरण के आगोश में आ
झर-झर झरित एक मूसलाधार मन की चट्टान पर
प्रताड़ित हो बिखरे उद्वेग और कण-कण होकर
वाष्प बन उड़ गये अतीत के सन्दर्भ सारे
विभ्रान्त मन खिल उठा..................

स्मृतियों की चकाचौंध, हृदय में हूक बन कांप उठती
इस घटाटोप में लुक छुप कर मेरा मन खेल रहा आँख मिचौनी
चहुँ दिशाओं में गुंजन ही गुंजन, छा गया जीवन पर नया विश्वास
विभ्रान्त मन खिल उठा.....................

बूंद-बूंद के लिये तरसती प्यास, घनीभूत होती जा रही थी
वर्षा आ जाने में तृप्त हो रही दग्ध धारा की आशा-सी
संतप्त हो आ रही भीनी-भीनी सुगन्ध मेरे ममत्व की
विभ्रान्त मन खिल उठा..................

जग जीवन के विन्यास में लय-सा मेरा समस्त आक्रोश
काल के सूत्र में माणिक का-सा पिरोया मेरा समस्त अस्तित्व
विलोड़न कर रहा है इठला-इठला कर शाश्वत सत्य-सा
विभ्रान्त मन खिल उठा.......................

प्रक्रम

कान्तिहीन कुसुम, टूटी डंठल पर लटके, झुकते गये निरन्तर
निर्विकार को सार करते, डंठल के नीचे छिपी हरियाली गुनगुनाती गान
जड़ता उर्वर हो उठी, उत्पत्ति का इतिहास बन क्या सौरभ के बिखराव से?
नहीं, आज तो सृष्टि लग रही है पतझड़ आ जाने से आक्रान्त
जो प्रताड़ित कर रही सूखी और हरी हर डाल को एक समान
खड़खड़ा रहे सूखे पत्तों के ढेर, अरण्य-अग्नि धधक रही
क्षितिज पर छाता गया सघन अन्धकार निशा आने से पहले
किन्तु सूखे कान्तिहीन विजन में, डाल-डाल पर बिछाया जा रहा
इस अशान्त बेला में भी ऋतु बदल जाने के बन्दनवार
कौन देश का तू वासी, किस दिशा से आती तेरी मधुर झंकार
जो सुप्त प्रकृति को तेरे प्रणय के रस में दे रही है पिरोये
आह्लादित धरती-आकाश, अरे तू तो है स्वयं तटस्थ, निर्विकार

आरोही

काहे माधव मौसम तू करत ढिठाई
राग न जाना, तोरा अनुराग न जाना .
विरह में अंसुवन जल सींच-सींच
बस कुण्ठा की बेल लहराई
काहे माधव....................
बंसी बजाई दूर देश में कहीं तू ने
मैं बावरी चहुँ ओर फिर आई
हर कूक में लगती, मेरे हृदय की हूक समाई
काहे माधव..................
ले चल मुझे भुलावा देकर
जहां तूने है रास लीला रचाई
सांवरे के संग नाच-नाच मैं हरि कीर्ति गाई।
काहे माधव..................

संज्ञापन

शान्त निश्चल नदी में, सुप्त धारा करवटें बदलती
समय के परिधान पर कुछ सिमट आई कुछ अतीत की यादें आज
ग्रसित हो चुका कालग्रास बन जो अतीत में
अमृत की पिपासा में आज भी उद्वेलित करता सैलाब बन
मन चहुँ ओर अपनी परिधि को बढ़ाने की आशा में
शान्त निश्चल....................
असीम को ससीम में संजोने, टूट जाते पल प्रतीक्षा में
समय की शाश्वत चट्टान पर गिरते ही तुरन्त जैसे
वैसे ही झरित मेरे अश्रुकण इस मूक व्यथा को भुलाने के प्रयास में
शान्त निश्चल........................

विभ्रमाभास

उत्पीड़ित मन मेरा खेल रहा क्यों आँख मिचौनी?
घटाटोप बादलों के पीछे, छिप गई कहीं सूरज-किरण
निराशा के फैलते अन्धकार को चीरता मेरा क्लान्त मन
आकाश में फड़फड़ा रहा अपने घोंसले में पहुंच जाने के लिए व्याकुल
सहसा बिजली कौंध जाने से प्रताड़ित हो भस्म हो गये
उसके सारे प्रयास, खर-खर कर बिखर रहे हैं किन्तु
मौन धरा पर पक्षी के पंख दो चार अवशेष रह गये जो अनायास
ग्रीष्म से दग्ध धरा भी अपने आगोश में उसे छिपाने के लिए असमर्थ
तभी पपीहे की रटन में बोल उठा धरती का समस्त त्रास
बरस पड़े वे काले सारे मेघ मेरे विदेश की खिड़की पर
झूम-झूम कर मेघों ने आकाश के वितान पर छा दिया एक इन्द्रधनुष
मेरे मन प्राण पर छा गया प्रिये, तुम्हारा जैसे विश्वास

मनोजनन

बोझिल तन-मन, त्रिकोण के आक्रोश में
ढूँढ रहा आशा-किरण को जैसे दिन ढले सूरजमुखी
बोझिल हो डाल पर गिन रही, कल सूरज आने की आशा को
अगणित कण बन बिखरा एक स्वप्न
फेनिल हो बह रहा मन का सन्ताप बन
पहाड़ों से घिरा उन्नत प्रपात बन

अन्यारोपरा

ममता रही मुझे पुकार
कोर में छिपे, आँसुओं की गहराई
तिरोहित लगते उसमें सीप से बिंधे, मोती से मेरे प्राण
ममता रही........................
गगन को छूने, धरती करती पुकार
बादलों सा उत्साह मेरा, बदल गया फिर इन्द्र-धनुष बन
अवशेष सदा रहता आकाश-सा मेरा एक विश्वास
ममता रही.....................
तिमिर अन्धकार में मेरे चरण, डगमगा रहे विवशता में
समय की परिधि घूम रही, आकर्षण में खिंच रहे हैं मेरे प्राण
नियति के चारों ओर
ममता रही...................

अनुकम्पा

विवशता को कब पहचाना तुमने, ऐ लौह पुरुष
जग में सिसक-सिसक कर जब कोई रोया
करुणा अंजुलि भर, तुमने अपना पथ मोड़ा
विवशता को......................

अतीत को भस्म करती, करवटें बदलती नई क्रान्ति की पुकार को बढ़ता देख
हुंकार भर तुम पूछ रहे क्यों, यह कौन नया जीवन संदेश?
विवशता को.......................

समय की तीव्र गति में तुमने स्वप्न कितने थे पिरोये
बोझिल हो जब वह लड़ी टूट रही, तुम गा रहे हो प्रलय के गान
विवशता को.......................

परिहास तो यह नियति का था, क्यों तुम्हारे द्रवित दृगों में
छाया अन्धकार मेरी एक मूक व्यथा सुन लेने के बाद
विवशता को......................

क्षितिज पर खड़ा कोई मुझे अंक भरने को
बढ़ते चलो स्वयं ही कट जायेगी जो भी है आक्रोश की बेड़ियाँ बँधी
विवशता को....................

जटिल तथ्य

तुमने किया था, मुझसे कब प्यार
वसन्त-से तुम, मेरी कुटिया में छिपकर आये
औत्सुक्य के बन्दनवार सजा, अभिनन्दन गान गाये
मन प्राण के दीप जगा, मेरी छवि को अनुहारा
किन्तु ऋतु-सा बदल गया फिर, तुम्हारा प्रणय निवेदन
अवशेष आज भी रक्त उषा-सा, नित दिन अन्धकार को चीरता
तुम में मेरा विश्वास, तुमने किया था...............
तुम्हारी चरणधूलि के लिये, राह मैं ताकती रही
उल्लास के प्रसून बिछाकर, मुरझायी पंखुड़ियाँ ढेर-सा सौरभ लुटा कर
व्यथा-सी बोझिल शाम, अन्धकार को आंचल समेटे
झकझरोती मेरे ममत्व को, करुणा से जो सिसक रहा
तुममें मेरा अनुराग, तुमने किया था................
युग-युगान्तर तक समय की गति को थामे
अनुराग रहेगा मेरा साकार क्षितिज के पार
माना गुनगुना चुके तुम अपना प्यार
अतीत का बन एक इतिहास
केवल स्मृतियों में मेरे बनकर, तुमने किया था.............

घटक

सुनहली बेला, मन अलबेला
लुक-छिप खेलता आँख मिचौनी
कुछ आप-बीती, जग-बीती स्मृतियों से
        चकित हो उठा, मौन निमन्त्रण पा
        भोर भये जैसे पक्षीगण गगन में
        उड़ते ऊँची उड़ान, दृगों में जिज्ञासा धरती पर अनाज खोजने की
एक चितेरा खींच रहा रेखायें
रंगों की प्याली को लबालब भर
उन्मुक्त कल्पना अंकित हो विच्छिन्न, ढेर-सा ममत्व लुटा कर
        हूक सी उठी हृदय के अन्तराल में वेदना
        आ टूटी मेरे वातायन पर परिहास की बिजली बन
        परित्राण पाने को अहं, झरित हो रहा आँसू बन

मनोग्रन्थि

आक्रान्त नभ, भ्रान्त कपोत
क्लान्त हो डगमगा गया
एक बहेलिया बैठा धरा पर ताक रहा उसे औत्सुक्य में
थम गई, मौन-सी, नभधरा की दूरी
प्रश्न बन खिंच गई अमिट रेखा विवशता की
कुछ नियति के बन्धनों में पूरी तरह जकड़ कर
सहसा बिजली की गड़गड़ाहट में
रजत किरण से फड़फड़ा उठे श्वेत पंख
विश्वास की लड़ी में पिरोये, नभ से निविड़ तक पथ को संजोये
उद्भ्रान्त कपोत के पंख जागे
व्याकुल व्यथा में जैसे अरमान जागे
पवन वेग से धरती को छू लेने के उल्लास में

वृद्धि-चक्र

थमे पानी पर जमी काई
रिमझिम वर्षा में असन्तुलित हो, डगमगाई
वर्षा की सतत् चोट में मेरे मन की विवशता सी
टूट पड़ी उसकी परिधि, कई एक रूपों में बिखर, बिखर
फिर भी नये अस्तित्व को खोजती अनजाने सैलाब में वह आज
सांझ का अँधियारा चारों ओर
मूक व्यथा-सा मन-प्राण पर बढ़ता जा रहा है
अशान्ति बढ़ती गई आज और कल की अनुभूतियों को समेटे
विजन अन्धेरी रात में एक विश्वास की चादर ओढ़े
गन्तव्य को पाने की लालसा में
सागर की हिलोरें तट से टकरा कर लौट पड़तीं
गहराइयों में खो जाने पर भी तट की ओर बढ़तीं
जीवन से अकुलाया ललक पड़ता मेरा अहं
मृत्यु को अंक भरने किन्तु पराजय के तट से टकरा-टकरा कर
लौट पड़ता अदृश्य के आकर्षण से अपनी ही परछाइयों में वह

बोध

उषा की किरणें हिमपात पर बिखेरे रही विश्वास
थिरक उठा उल्लास में मन, गा उठा अनुराग
सुदूर दिशाओं तक जीवन विन्यास फैला
छा गई उन्माद बन अचेतन की उलझी कड़ियाँ
एक मूक वेदना को चेतना पर पसार
ले रहा लहरों में हिलोर करता, सागर तट सिंचित करता
स्नेह का अम्बार, मन प्राण पर पंख पसार

अनुबंधन

इस परदेश में अन्धेरे का साया
बिजली की चकाचौंध में कसमसाया
भोर होने की राह में न अलसाया
ऊषा किरण छिप जाती यहाँ के कोहरे में
सुबह का ताज़ापन लगता प्लास्टिक के फूलों सा
कान्तिमान रखता यहां सौ वाट का बल्ब कमरे के हर कोने को
जो अपार्टमेन्ट के हर एक नम्बर को एक सरीखा बनाये हुए है
सब-वे की रेलपेल में अमीर और गरीब सब चढ़ते ठेलते
किन्तु सीट पर बैठे अमीर की जेब में कसमसा उठता गर्व से चूर
करोड़पति का क्रेडिट अकाउन्ट, सिमट कर छिटक जाता
एक कोरे कागज सा दूजे मानव का अपने में विश्वास

संगति

भूल शूल सी, अनुराग में लिपटी, चेतना पर
वेदना की अम्बार बन एक सतत् पुकार है
चिन्गारी सी सुलग रही, फड़क कर चिटकने को
क्षितिज पर पहुंचने को, मेरे ममत्व की पुकार है
त्राण पाने को, प्राण मेरे छटपटा रहे, सागर तट पर
बालू में लिपटी मीन जैसे, व्यर्थ सारे प्रयास हैं
टूट रहे नदिया पर बने कगार से ये मौन प्रहरी
जीवन तट पर गौरव की गाथा गाते थके पथिक के स्वर
जलधार की सतह पर फेन बन क्या मेरी अनुभूति के विकार हैं?

नियत-त्रुटि

देखा था मैंने एक दिन, किसी बाण के लगने से
कपोत के श्वेत पंखों से लहू निकलते
विवशता बन खिंच गई मेरे मनप्राण पर यह अनुभूति
कपोत पर थी किन्तु मृत्यु की अमिट रेखा
चीत्कार जो सुना था अपने कान से
खो गया तत्क्षण वह शून्य में अहसास बन
दिशायें मूक रहीं, धरा पर चितवन झुकाए
संवेदनायें मेरी बन गई सख्त बर्फ सी क्षण भर के लिये
पिघलती रही वह नियति की धूप में चिरन्तन
सैलाब बन कर बहा लाई कुछ टूटे पंख और अस्थिपिंजर
मेरे वातायन पर टकरा-टकरा कर वह बदबू
शाश्वत क्यों बन गई जब जीवन है नश्वर?

सह–सम्बन्ध

मेरे वातायन के शीशे पर
झिलमिला रही वर्षा की एक बूंद सी
प्रिये, लगता तुम्हारी याद का संकेत
इस दृष्टिपात होते ही, आह्लादित मेरा मन
पुलकित तन–मन जो रहा था निरन्तर
विरह के आक्रोश में अनन्त की सीमाओं में घुलमिल जाने के लिये
कर रहा था मुझे व्याकुल, उस नन्हीं बूंद सा
जो बिंध जाने की विवशता में बटोर लेती समस्त तरलता का अनुराग
ढुलक रहा है इधर–उधर पवन के वेग से
शीशे के धरातल से चिपक बिखरा कर सतरंगी किरणों को
फिर वाष्प बन उड़ गया प्रिय तुम्हारा वह सन्देश

हर्ष

मुक्तहास-सा, प्रातः के प्रकाश-सा
चीरता बढ़ रहा, अन्धकार को समेटता
एक विश्वास
खिले कमल-चक्र, थिरक रही, ओस की बूंद
चूमती उषा किरण, मौन धरा पर छा गया
प्रतिबिम्ब प्रकृति के इस अभिसार का
अज्ञात प्रेरणा से
हृदय की हूक, जन-जन की पुकार में, साकार
अनन्त में बादलों पर जो वाष्प बन छा गई
कल्याण के कुछ मधुर गान बन, गाती हुई
मूक वेदना आज
धूप-छाँह सी खिलवाड़ करती, साँझ ढले प्रांगण में
एक अभिलाषा तिमिर अन्धकार को आगे बढ़ते देख
माँ के आंचल में छिपाये, भोले बालक की सी
हल्की खिलखिलाहट

अन्वेषी-उपबोधक

ससीम की, असीम से मिलन की लालसा ने
बालू की भीति के कगार बनाये, नदिया के उद्‌गम स्थान से
तट की कुछ क्षण संज्ञा बन, नित स्थान परिवर्तन से आकार न पा सके
गिर कर मिट गये वेग के अथाह में, संज्ञा-विहीन कगार
नदिया का जल, सागर की चाह में, जानकर भी अनजान
खोज रहा प्रकृति की गोद में निरन्तर गिरता पड़ता उन्मुक्त लहरों के साथ
गगन को चूम लेने का केवल एक खिलवाड़ करता हुआ
दीपक की लौ स्नेह से लबालब भरी
प्रकाशित करती रही अँधियारे को ज्ञानद्वीप की लौ-सी
जो रात्रि के मध्यान्तर में उठकर देखती उषा किरण फूटती
एक अज्ञात राही की राह तिमिर अन्धकार में भी आशा बन
मन प्राण पर चिर-परिचित पदचापों को सुन लेने का आभास
नियति की विषमताओं से आक्रान्त वह लौह पिण्ड-सी
धधकते इस संसार की भट्टी में अनेक आकारों के वरदान दे गई
निरन्तर पिघलते रहने पर, दया बन गई एक चिरन्तन सत्य
जिसे स्वयं देखने में वह असमर्थ, किन्तु हर युग के परिवर्तन में
मानव चेतना रही है त्रस्त जब तक उद्‌बोधन सम्भव न हुआ
यह अन्तिम क्षण है पीड़ा का, अवशेष प्रिये तुम्हारी सतत् खोज में
पीड़ा न रहेगी, ज्ञान-अज्ञान से तिरोहित हो जाने के प्रयास में
राख में पार्थिव शरीर को भस्म होने के बाद भी अवशेष रहेगी क्या
इन स्मृतियों की आड़ में खो जाने के लिए एक अबोध शिशु की चीत्कार

अर्हता

बालू पर पड़े चिन्ह अमिटता के स्वप्नों को संजोये
पवन के एक वेग में बालू के कण-कण बने
तिरोहित होते गये, एक सूनी राह बन
उड़ गये नयन से नीर बनकर अश्रु झर-झर
कसक पीड़ा की लिये पर प्राण जीवित अभी तक
वरदानों की आश लिये
मान-अभिमान में प्रणय का संवेग सारा
उड़ा ले गया यौवन को पावस ऋतु-सा
मेरी बगिया के सारे फूल
प्रतीक्षा में निरन्तर अनुराग सिसकता
पिघल न सकी अब तक यह उन्नत हिम की चट्टान
जो विवशता सी छाई रही मन प्राण पर जन्म-जन्मान्तर तक

अभित्याग

हाहाकार करती, चीखती चिल्लाती, चेतना को झकझोरती
एक स्वर में क्रन्दन करती, मनोविकार की यह व्यथा
उसे बिजली का आघात (ECT) कब कर सका शान्त
फिर भी प्रयत्न जारी है इस वेदना को मूक कर देने के लिये
उस प्रशस्त प्रहरी के जो टूट चुका सीमा पर अपना झण्डा गाड़
वीर गति पाने के बाद उसके देशवासियों की चेतना पर
हूक उठती, कुछ कर गुज़रने की एक लालसा बन
श्रद्धा-सुमन चढ़ा देना पर्याप्त न था, अमूर्त को मूर्त की छवि देकर
जैसे प्रतीक्षा का आर-पार न हो समस्त जीवन राह ताकने के बाद

वियोजन

एक थिर हुये अस्तित्व का ज्ञान
बर्फ के टूटे कतरे सा, आड़े तिरछे कोनों में
सिमिट कर नुकीला पैना बन सतत् पिघलता अस्तित्व विहीन
वाष्प बन उड़ गया, कब किधर, न जान पायेगा कोई जन
चेतना के प्रश्न ये नादान, उत्तर को तरसते ले गये
अज्ञात सम्मोहन में जन्म जन्मान्तर को क्षितिज तक
जहाँ केवल विजन अंधेरी रात, अतृप्त प्रेमी की पुकार सी
कर देती चेतना की परतों को स्पन्दित एक स्मृति की कौंध बन

विसंगठन

नैराश्य के इन क्षणों में, चेतना का बिखराव असीमित
अब लाये कौन संजोकर उद्‌बोधन के गान
अहं तो दर्द की मुद्रा में पड़ा खटिया तान
समझाये कौन किसको जब हो गये हों सब सन्दर्भ विच्छिन्न
जड़ से कटे वृक्ष से, सारे विश्वास धरती पर पड़े समाधि बना
किन्तु फिर भी है राहगीरों की पूजा से उपेक्षित
पीड़ा बूंद-बूंद बन रिस रही, क्यों प्राण पखेरू उड़ते नहीं
एक ठंडी सांस लेकर एक ही अन्तिम उबास में
जीवन की रेल-पेल में, समय के साथ-साथ प्रहरी बने संकल्प मेरे
अहं को ललकार क्यों न जगा देते, जो रहा है जीवन जीने की
केवल एक विवशता से आक्रान्त होकर व्यर्थ में उसे अन्तरतम में छिपाये

असन्तुलन

सुबक-सुबक कर जड़ होती यदि मानवीय भावनायें
तो कलियां मुरझा जातीं अभिनन्दन कर उस स्रष्टा का
जिसने प्रेरणा दी थी उन्हें फूल बन डाली पर इतराने की
संकल्प को अनुबन्ध न बना सकने की छटपटाहट में
विकलांग बन गये डगमगाते पग राजधानी के राजपथ पर
विवशता स्तंभित सीता-सी परित्यक्ता हो राम से कुछ न कह पायी
किन्तु धरा फट न पायी आज इतिहास की उस पुनरावृत्ति का आवरण ओढ़े
जिसको शिव की परिकल्पना ने युग युगों तक प्रतिबन्धित रखा था
जीवन को जीने, वही उपेक्षित मौन धरा सी बनी बंजर धरती सी आज

विरुचि

उन्नत पहाड़, सघन हरियाली किन्तु उसकी विकलता से भयंकर विधियां बनाये
जीवन पथ पर अड़े हर मोड़ पर अवरुद्धता का आभास बने
अनन्त की खोज, जब तक विकराल रूप लांघ, बदल न जाये एक लम्बी घाटी में
जहां सख्त चट्टानों से झरने बन जायें नदियां, नेह की करने लगे झर-झर वर्षा
हर बूंद में हो नैराश्य को धो देने की अमरता का उल्लास
हर क्षण में हो अतीत को समेट भविष्य के आगमन का मौन नियन्त्रण

उल्लास

गर्म उच्छ्वासव की अनुभूति से मरुभूमि पर सेतु बांधे
बिंध गये जो थे बिखरे अतीत के सन्दर्भ सारे
क्षितिज पर ढलते सूर्य के विशाल दर्शन ने
खोल दिये जन्म-मरण के बन्धन सारे मौन में
स्पन्दित करता चहुँ दिशाओं को, अन्धकार में डुबाता गया
सूर्य कल उगने का वादा कर मरुभूमि को
निहारता रहा इस अद्‌भुत रूप को, आकाश का चंदवा बनाये
जब तक न उग आयें अनगिनत तारे मरुभूमि के लिये
जो बैठी रही आँखें बिछाये चौथ के चांद की प्रतीक्षा में
रेत पर छाई धूप अँधियारी भरी शीतलता को थामे
एक अज्ञात स्पर्श का सम्मोहन पाते ही
चांदनी रेत पर चाँदी बिखेरती, नृत्य करती रही
भोर होने तक मरुभूमि जीवन में एक नई आशा लिये

समचित्तता

शब्द कहें न कहें, अनुबन्ध बनें न बनें
पीड़ा आत्मसात होने पर, कलकल जलधार-सी
बहाव में बहती नदियाँ-सी, फिर उसे कौन रोक पाया?
युद्ध से क्लांत चित्त ऊबें न ऊबें
सिसकती चीखें थमें न थमें
किन्तु युद्ध विराम होने पर, कुचले सर्प-सा
धूल धूसरित मानव अहंकार केवल बन जाता
इतिहास के एक अन्धे काल का ग्रास

मूक विवशता तपे न तपे, अश्रुधारा थमे न थमे
मुक्त हास-सा खिल उठता, प्रकृति की डोर से बंधा
कमल, भोर हो जाने के बाद, समय बदलने का अहसास बन
शब्द जाल में बंधे न बंधे, चेतना कुछ गुँथे न गुँथे
स्पन्दन प्रति स्पन्दन डोर में बंधी, अनुरक्त प्रिय मिलन की आशा
अन्धकार को चीरती उल्लास भर देती मन प्राण पर
बिखरी मान्यतायें सुलझें न सुलझें, लाशों के ढेर पर चितायें बुझें न बुझें
शाश्वत सत्य-सी, डग बढ़ाती समय की पुकार, मौन में संकल्प बन
आह्वान दे रही जीव मात्र के लिये, कल्याण की बांसुरी बजाकर

प्रयोग

कल-कल नदिया-सी सरसता बहती
बहाव में मैं अनुगामिनी बढ़ती जाती
मौन में आवाहन सागर का, फैला मानसिक त्रास इस अस्पताल में
कम्पित स्वरों में, सांसों के स्पन्दन में समा गया हो
चहुं ओर मानव के क्रन्दन का आभास, एक बन्द कोठरी*
से आकर मेरे साथ
विलोड़न करता रहता उसके जीवित रहने का अहसास बना
किन्तु उस थके पथिक के ये क्रान्ति सन्देश बांसुरी बजाकर
कौन बिछा रहा, बन्दनवार बन जीवन की हर राहों पर
ओ रे बनवासी, ले चलेगा उन सबको भी क्या क्षितिज के उस पार?

---

* Mental hospital single cell

विस्तार

पानी के बुलबुले की तरह, वह ध्वनि मेरी चेतना को
ताज़गी भरी गुदगुदाहट देकर अनन्त में विलीन हो गयी
उसको तिमिर अन्धकार में ढूंढ़ लेने के प्रयास व्यर्थ मानो
विरहिणी रात्रि ने दीपक सँजो रखा था उसे बुझा दिया गया
क्योंकि उसे न भर दिया किसी ने लबालब स्नेह से
मस्तिष्क में समायी यादें, गर्म बिस्तर में सिमट कर रह गयीं
किसी के अहं का दर्प मजबूती से उन्हें थामे पिरोता गया
प्यार की माला में विवशता की एक बड़ी मणिका बन

आत्महत्या

नैराश्य की काली स्याही, लुढ़क पड़ी चेतना को चीरती
अज्ञात के एक सम्मोहन में, समस्त विकारों को आत्मसात् करने के भ्रमजाल में
उन्मादों की गर्म राख, प्रज्वलित हो प्रचण्ड होती गयी
काया निष्प्राण हो तकने लगी, उस बधिक को जो जन्मान्तर से रहा ठग
जीवन का मोह शेष न रहा, विवशता के बन्धन खुलने लगे
चारों ओर थी शून्यता आँखें बिछाये, मरुभूमि बन गई हर सांस असह्य वेदना की
न अवशेष अश्रु थे, जो बुझा पाते धू-धू सुलगती इस व्यथा की आग
जिसका न कोई ओर था न छोर था, बन जाने के बाद एक मौन संकल्प
न जाने किन क्षणों में, उसके द्वार पर, मृत्यु ने आकर खींच दी एक लकीर
जिसके पार देख न पाये कोई क्या उसने खोया क्या पाया अपनी आत्महत्या के बाद
ये प्रश्न नहीं, न ज्ञान, न विज्ञान, केवल जीवन सार, निकल पड़ा है
सूरज की लाली को गोला बन, डूबते देख, जो अन्धकार बन,
जगत को दे गया कल की आशा